AMOGHVARTA
ISSN : 2583-3189

सुशीला टाकभौरे के कथा–साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन

ORIGINAL ARTICLE

Author
मुहम्मद अनीस
हिंदी विभाग, कला संकाय
दयालबाग़ एजुकेशनल इंस्टीट्यूट
दयालबाग़ आगरा, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध सार

"सुशीला टाकभौरे के कथा–साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन" के अंतर्गत दलितों के इतिहास को, इनकी पृष्ठभूमि एवं भारतीय वर्ण–व्यवस्था तथा समाज में व्याप्त जाति–व्यवस्था के दंश को झेलते दलितों एवं दलित स्त्रियों की समस्याओं व संघर्षों को, दलितों के उत्थान हेतु समाज सुधारकों द्वारा चलाए गए आंदोलनों को विश्लेषित किया गया है साथ ही स्वतंत्रता पश्चात शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं सामाजिक बदलाव से आई दलित चेतना एवं हिंदी साहित्य में दलित लेखकों एवं लेखिकाओं के कथा लेखन से उपजे दलित साहित्य का विवेचन किया गया है। दलित लेखिकाओं में विशेषतः डॉ: सुशीला टाकभौरे जी ने अपनी लेखनी एवं आंदोलनों के माध्यम से नारी चेतना, नारी–मुक्ति–संघर्ष, नारी अस्मिता एवं अस्तित्व को बनाने हेतु ब्राह्मणवाद का, वर्ण–व्यवस्था का, सामाजिक दुर्व्यवस्था का, जात–पात का विरोध करते हुए महात्मा बुद्ध, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले और डॉ. भीमराव अंबेडकर के दर्शन को अपनाकर लेखन किया और दलित चेतना को जाग्रत एवं दलितों के जीवन को सुदृढ़ बनाने हेतु जो प्रयास किए हैं, उसका यथार्थ के धरातल पर विश्लेषण कर उजागर किया है।

मुख्य शब्द

वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, पितृसत्ता, स्त्री, दलित, आंदोलन.

सुशीला टाकभौरे के कथा–साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से पूर्व दलितों के इतिहास को, इनकी पृष्ठभूमि एवं संघर्ष को जानना व समझना अति आवश्यक है, क्योंकि दलित उत्पीड़न की जड़ें हिंदू धर्म में जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति तक नज़र आती हैं। भारतीय समाज व्यवस्था की शुरुआत में ऊंच–नीच, जात–पात, छुआछूत आदि का भेद नहीं था। वैदिक कालीन समाज में जातियों का उल्लेख नहीं है। उस समय समाज व्यवस्था वर्णप्रथा पर आधारित थी जिसमें क्रमशः चार स्तर होते थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। कहा जाता है कि "यह चार वर्ण क्रमशः से ब्रह्मा के मुख, भुजा, उरु और पैर से उत्पन्न हुए थे। इस वर्ण संरचना का उद्देश्य भारतीय समाज को एक इकाई में बांधना था। जिस तरह मुख, हाथ, उरु और पैर मिलकर शरीर बनता है वैसे ही चार वर्ण मिलकर समाज की रचना करते हैं।"[1] समाज को चार वर्णों में विभक्त करने का मुख्य आधार श्रम विभाजन था। जो बौद्धिक कार्यों को संपन्न करे तथा समाज को शिक्षित बनाने का काम करे वह ब्राह्मण, जो अपने बाहुल्य से समाज की हिफाज़त (रक्षा) करें वह क्षत्रिय, जो समाज के लोगों के लिए भरण–पोषण के कार्य करे वह वैश्य तथा जो इन तीनों की सेवा करे वह शूद्र है। शूद्र समाज के उस दर्जे को कहा गया जो न तो बौद्धिक कार्य कर सकता था और न

ही भरण–पोषण की ज़िम्मेदारी निभा सकता था। सामाजिक कर्म वर्ण–व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था, परंतु समाज का कोई भी कर्म न छोटा और न ही बड़ा माना जाता था लेकिन धीरे–धीरे सामाजिक ज़रूरतों और ब्राह्मणवाद एवं राजतंत्र के घनिष्ठ गठबंधन और प्रभुत्व एवं वर्चस्व के कारण वर्ण–प्रथा का अर्थ परिवर्तित होने लगा। इसका मुख्य कारण 'मनुस्मृति' में निहित जाति का दर्शन है, जो दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व का एक पवित्र हिंदू ग्रंथ माना जाता है जिसमें अछूत अथवा बहिष्कृत समुदायों या दलितों को अन्य समुदाय के धार्मिक अनुष्ठानों एवं सामाजिक जीवन में होने वाले कार्यों में शामिल होने से मनाही है। उन्हें पशु वध और चमड़े के काम जैसे अपवित्र, गंदे, घृणास्पद, घिनौने माने जाने वाले निम्न व तुच्छ कार्यों एवं अभिजात्य वर्ग या उच्च जातियों की सेवा तक ही सीमित रखा गया। मनुस्मृति के पर्यालोचन से यह स्पष्ट होता है कि शूद्र समाजिक परम्पराओं में पूर्णतः अलग था, जो हक़, अधिकार उच्च वर्णों अथवा अभिजात वर्ग को प्रदान किए गए थे, शूद्रों को उनसे वंचित रखा गया जिससे आगे चलकर वर्ण–प्रथा के भीतर जाति–प्रथा का जन्म हुआ, जिसका आधार कर्म के बजाए जातिगत हुआ।

परिणामस्वरुप फिर जिस वर्ग का, वर्ण का, जाति का सदियों से सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक एवं शारीरिक रूप से शोषण होता रहा है, जो सदियों से उच्च जातियों अथवा सवर्ण समाज के अन्याय,अत्याचार से पीड़ा भोग रहा है, जिसे वैदिक काल से शिक्षा, धर्म, संस्कृति एवं मानवीय अधिकारों से वंचित रखते हुए, शोषित एवं प्रताड़ित किया गया है, जो सदियों से सवर्ण समाज तथा उच्च वर्ग की मासिकता की अवहेलना झेलता आया है, जिसे निम्न, नीच, अछूत, अस्पृश्य, शूद्र, शोषित, पीड़ित, दबा हुआ, कुचला हुआ, मसला हुआ, उदास, रौंदा हुआ, पिसा हुआ आदि नामों से वह अभिभूत किया गया है, वह दलित है। दलितों का जीवन अभाव, दुःख और अपमान का जीवन रहा है। कंबल भारती ने भी स्पष्ट लिखा है– ''दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है, जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यता की संहिता लागू की वही और वही दलित है और इसके अंतर्गत वही जातियां आती हैं जिन्हें अनुसूचित जातियां कहा जाता है।''[2]

दलितों को लेकर उनके उत्थान के लिए जो लहर चली उसे हम नवजागरण कह सकते हैं, यह लहर महाराष्ट्र से चली। वह लहर थी दलित – मुक्ति– आंदोलन की, जिसने न सिर्फ भारत का बल्कि पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था। इस लहर को पैदा करने वाले थे महात्मा ज्योतिबा फुले, ''ज्योतिबा फुले ने 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थापना की थी और इसी वर्ष उनकी क्रांतिकारी पुस्तक 'गुलामगिरी' प्रकाशित हुई थी। इस समय तक रानाडे का प्रार्थना समाज अस्तित्व में आ चुका था। इसके 2 साल बाद 1875 में दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की थी। दलित आंदोलन जिन महापुरुषों से शक्ति ग्रहण करता है उनमें ज्योतिबा फुले के अलावा केरल के नारायण गुरु (1854), तमिलनाडु के पेरियार रामास्वामी नायकर (1879– 1973),उत्तर भारत के स्वामी अछूतानंद (1879 – 1933),बंगाल के चांद गुरु (1850 – 1930), मध्य प्रदेश के गुरु घासीदास (1756) आदि प्रमुख हैं।''[3] इनके अलावा डॉ. भीमराव आम्बेडकर (14 अप्रैल 1891– 6 दिसंबर 1956) का नाम भी दलितों के मसीहा के रूप में लोकप्रिय है। यह भारतीय दलित (हरिजन) बहुज्ञ, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ, और समाज सुधारक थे। इन्होंने दलितों–पिछड़ों, अछूतों, ग़रीबों, किसानों, महिलाओं, के हक़ों, अधिकारों से संबंधित काम किए और सामाजिक भेदभाव, जाति–व्यवस्था के विरुद्ध अभियान चलाया।

भारत में 20वीं शताब्दी का पूरा दौर सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। लंबे संघर्ष के बाद अंग्रेज़ी हुकूमत से 15 अगस्त 1947 ई. में देश को स्वतंत्रता मिली लेकिन साथ ही ना भूलने वाली एक त्रासदी के रूप में देश (भारत–पाकिस्तान) का बंटवारा हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारतीय समाज में अनेक नई पुरानी समस्याएं विकराल रूप में विद्यमान हैं; जैसे– जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, धार्मिकता, पितृसत्तात्मकता, सांप्रदायिकता, वर्ण– व्यवस्था, छुआ–छूत, लिंग–भेद। सदियों से शोषित, पीड़ित स्त्री एवं दलित वर्ग की पीड़ा और इनकी दयनीय स्थिति तथा मुसलमानों की त्रासदी व भेदभाव। इसके अलावा बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, भूमंडलीकरण आदि। स्वतंत्रता पश्चात् नारी जागरण और शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ जिसके फलस्वरुप सातवें एवं आठवें दशक में आधुनिक हिंदी कथा–साहित्य में अनेक दलित लेखक एवं लेखिकाओं की उपस्थित सशक्त रूप में उभर कर सामने

आई जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से साहित्यिक आंदोलन चलाया और एक नई साहित्य की धारा के रूप में 'दलित साहित्य' को खड़ा किया।

दलित साहित्य वह लेखन है, जो वर्ण–व्यवस्था के ख़िलाफ़ तथा उसके विपरीत मूल्यों के प्रति संघर्षरत मनुष्य से जुड़ा है। ''ज्योतिबा फुले, स्वामी अछूतानंद तथा डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने वर्ण व्यवस्था का विरोध कर दलित पुनर्जागरण और व्यवस्था बदलाव के लिए क्रांतिकारी साहित्य का सृजन किया और जिसके कारण हजारों वर्ष के मूक मनुष्य को 'दलित साहित्य' के माध्यम से वाणी मिली है। सामाजिक परिवर्तन न्याय– यथार्थ, ममता, लौकिक एवं वैज्ञानिक प्रतिमानों को आधार मानकर तथा सवर्णवादी व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश, सामंती आतंक यथार्थ एवं अत्याचार का विरोध करते हुए भारतीय साहित्य में दलित साहित्य का एक मुख्य आधार बनाकर खड़ा हुआ है।''[4] भारतीय साहित्य की विविध विधाओं में दलित चेतना प्रभावित हुई है। दलित साहित्य का मुख्य लक्ष्य अपने समुदाय को पराधीनता की परंपराओं से मुक्ति दिलाना है। वर्तमान समय में भी दलित अपनी अस्मिता एवं पहचान के लिए संघर्षरत है। दलितों की स्थिति में सुधार की भूमिका निभाने वाला साहित्य आज भी दलितों की आवाज़ को बुलंद किए हुए है। साहित्य ही एक ऐसा प्लेटफॉर्म है, जो दलितों को तथा उनकी स्थितियों को एवं समस्याओं को आज यथार्थ के धरातल पर उजागर कर रहा है। वैसे दलित विमर्श से पहले भी हिंदी कथा–साहित्य में प्रेमचंद, निराला जैसे साहित्यकारों ने दलित समाज एवं दलित स्त्री के जीवन से संबंधित कहानी एवं उपन्यास लिखे हैं। प्रेमचंद की 'कफन', 'सदगति', 'ठाकुर का कुआं', 'रंगभूमि', 'गोदान' तथा निराला की 'चतुरी– चमार' इस संबंध में उल्लेखनीय है, लेकिन वर्षों से जिस पीड़ा को सहन करता आ रहा दलित, उस पीड़ा में सुख का बीज दलित लेखक एवं लेखिकाओं ने बोया है।

हिंदी दलित साहित्य की शुरुआत में ज्यादातर कविताएं एवं आत्मकथाएं लिखी गईं मगर सातवें–आठवें दशक में अनेक दलित लेखक एवं लेखिकाओं ने कहानी एवं उपन्यास विधा को अपनाया। दलित लेखकों में मोहनदास नेमीशराय जी की कहानी 'सबसे बड़ा सुख' (1978) को प्रथम कहानी मानते हैं। कुछ ही समय में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'अंधेरी बस्ती' (1990) कहानी पाठकों के समक्ष उपस्थित होती है। हिंदी दलित कहानी की यात्रा आठवें दशक में बहुत तेज़ी से उभरी है तथा अनेक दलित रचनाकार उभरकर अपनी उपस्थिति को दर्ज कराते हैं और अपनी दलित कहानियों के माध्यम से दलित साहित्य को एक मज़बूत आधार देने की कोशिश करते हुए नज़र आते हैं। दलित कथाकारों का यह प्रयत्न दलित साहित्य को गंभीर चुनौतियों का सामना करने की ताक़त प्रदान करता है। हिंदी दलित साहित्य में कहानी के विविध उतार–चढ़ावों और कथित आंदोलन से अनेक दलित कहानी परिवर्तन हुए और सामाजिक परिस्थिति में यथार्थ चित्रण की एक विशिष्ट धारा के रूप में उभर कर सामने आती है जिसकी तरफ़ हिंदी साहित्य के समीक्षकों का ध्यान बहुत देर से गया है। हिंदी कथा–साहित्य के कहानी में नई कहानी, अ– कहानी, समांतर कहानी तथा जनवादी कहानी आदि पड़ावों से गुज़रते हुए वर्तमान हिंदी कहानी और कथ्यों का बहुत ही निकटता से संबंध प्रस्तुत हुआ है।

पाठक वर्ग कहानी की कल्पना लोक तथा रोमानी मायावी संसार से मुक्त होकर एक नयापन का एहसास महसूस कर रहा था। इसी के साथ दलित चेतना की कहानियों ने अपनी कथावस्तु एवं विचारों से दलित कथा–साहित्य को शीर्ष पर पहुंचाया। नवें दशक में भारतीय साहित्य में दलित कहानियों ने खास पहचान निर्मित की थी। हिंदी साहित्य के लिए दलित साहित्य की चर्चा अब नई नहीं है। हिंदी दलित साहित्य में मोहनदास नेमीशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ. सूरज प्रकाश बड़त्या, डॉ. सुशीला टाकभौरे, रजत रानी 'मीनू', रजनी दिसोदिया तथा अनिता भारती की कहानियां प्रमुख हैं। हिंदी दलित साहित्य ने अनेक समस्याओं का सामना करते हुए अपने साहस एवं जागृति के बल पर अलग पहचान बनाई है।

दलित कथाकारों ने अपने सर्जनात्मक आक्रोशित आवाज़ को यथार्थ की भूमि पर खड़ा कर परिवर्तन के नए फैलाव स्थापित किए हैं। ''दरअसल सामाजिक विषमताओं, संघर्षपूर्ण परिस्थितियों, भेदभाव और अंतर्विरोधों को चित्रित करने की प्रवृत्ति उसने किसी दबाव अथवा प्रतिक्रिया के तहत नहीं की है, किंतु यह उसका अपना स्वाभाविक

एवं वस्तुनिष्ठ स्वरूप है।''[5] आवेश पूर्ण बदलाव की पक्षधर्ता उसका जीवन मूल्य है। दलित लेखक एवं लेखिकाओं ने दलित की स्थिति को किसी दबाव या प्रतिक्रिया के तहत अपने लेखन में नहीं उभारा है बल्कि यह उनकी अपनी प्रतिक्रिया है। उन्होंने दलित की स्थिति तथा उसकी हक़ीक़त को पूरी आत्मीयता के साथ यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त कर उसके वर्चस्व को बचाने की पूरी कोशिश की है। दलित कथाकारों ने पूर्ण स्वतंत्रता एवं निष्ठा के साथ दलित लेखन को तथा दलितों की विभिन्न समस्याओं एवं विषय वस्तु को बखूबी ढंग से अपने दलित साहित्य में चित्रित किया है जिसे वर्तमान समय का साहित्यकार,कवि, लेखक तथा पाठक वर्ग भली –भांति परिचित होकर उसे सराह रहा है। इस क्रांतिकारी यात्रा में जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान,बुद्ध शरण हंस, डॉ. दयानंद बटरोही तथा डॉ. सूरज प्रकाश बड़त्या ने यथार्थ परख संवेदनशीलता एवं सामाजिक विचार विमर्श की कहानियां लिखी हैं। वहीं डॉ. सुशीला टाकभौरे, रजत रानी 'मीनू', रजनी दिसोदिया तथा अनिता भारती ने दलित महिला एवं दलित समाज की पीड़ा को यथार्थ रूप में सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। हम इस आलेख में दलित वर्ग एवं दलित स्त्रियों की स्थिति व उनके जीवन–संघर्ष तथा इनसे संबंधित उठ रहे प्रश्नों, जैसे– दलित विमर्श में स्त्री चेतना एवं चिंतन, अस्तित्व एवं अस्मिता का स्वरूप तथा समाज में दलित स्त्री की स्थिति क्या है? समाज में सबसे निम्न कही जाने वाली जातियों (दलितों) की वर्तमान परिदृश्य में क्या स्थिति है? आज भी दलितों एवं दलित स्त्रियों को अपने अस्तित्व, अस्मिता, पहचान एवं मान सम्मान के लिए किन–किन परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ रहा है? आदि का विश्लेषणात्मक अध्ययन सुशीला टाकभौरे जी के कथा–साहित्य के विशेष संदर्भ में कर रहे हैं।

सुशीला टाकभौरे

सुशीला टाकभौरे जी ने स्वयं को सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अभिहित किया है। वे बुद्ध की करुणा, समता, मैत्रीय भाव से प्रेरणा लेकर समाज जाग्रति के लिए कटिबद्ध महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले से प्रेरणा लेकर वे उनके विचारों की संवहक बनी। डॉ. अंबेडकर की विचारधारा को समझकर ब्राह्मणवादी, मनुवादी विचारधारा का उन्होंने खुलकर विरोध किया। सुशीला जी हिंदी दलित साहित्य की अग्रणी महिला साहित्यकारों में से एक हैं। हिंदी के दलित साहित्य में जिन महिला रचनाकारों ने दलित और स्त्री अस्मिता के लिए ज़मीन तैयार की उनमें सुशीला जी का सक्रिय हस्तक्षेप दिखाई देता है।

इन्होंने अपने लेखन साहित्य में मुख्य विषय–वस्तु के रूप में दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के साथ–साथ शिक्षा की समस्या,जाति–भेद की समस्या,पुरुष मानसिकता की शिकार नारी, अंधविश्वास एवं कुरीतियां, धार्मिक समस्या, बेरोज़गारी की समस्या, भ्रष्टाचार आदि जैसी समस्याओं को चित्रित किया है। इनके कथा–साहित्य में अंतर्वस्तु के केंद्र में मुख्य रूप से दलित और नारी की पीड़ा को देखा जा सकता है। वह स्वयं कहती हैं कि, ''मेरे लेखन का उद्देश्य प्रमुख रूप से दलित विमर्श और स्त्री विमर्श है। इस दृष्टि से शोषित, पीड़ित एवं मानवीय अधिकारों से वंचित दलितों और स्त्री वर्ग की वास्तविक स्थिति से समाज को परिचित कराने का प्रयत्न किया है। यह हमारे समाज का सत्य है,जो सामाजिक रीति– रिवाज की परंपराओं एवं धर्म मान्यता के कारण सदियों से चला आ रहा है। इसके कारण इक्कीसवीं शताब्दी में अभी भी वर्ग–भेद, जाति–भेद और लिंग–भेद की मानसिकता समाज में व्याप्त है। यह उनके शोषण और अन्याय के प्रमुख कारण हैं।''[6] इसी आधार को लेकर सुशीला जी ने अपने कथा– साहित्य का सृजन किया है। इनका लेखन साहित्य एक यथार्थपरक अंदाज़ में लिखा गया है। जहां एक और स्त्री उत्पीड़न की आहट है, तो वहीं दूसरी ओर वर्णवादी, सामंती शोषण एवं दलितों की दयनीय दशा को देखा जा सकता है। भारतीय समाज के इस यथार्थ को व्यक्त करने के लिए जो साहस होना चाहिए, वह उनकी कथा–साहित्य में मिलता है। इनमें दलित चेतना और स्त्री उत्पीड़न के जितने पक्ष हैं उनमें से अधिकांश की समझ और अभिव्यक्ति का कौशल इनके पास है। इसीलिए इनका कथा–साहित्य 'वाह' का नहीं 'आह' का दिखाई देता है।

भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों पर अन्याय,अत्याचार करने वाले सवर्ण हिंदू हैं और दलित भी हिंदू हैं। जिन्हें जाति, धर्म के आधार पर अशिक्षित, निर्धन रहने के लिए विवश किया गया है। सवर्ण के लिए दलित सिर्फ़ सेवक, मनोरंजन का साधन और घृणा करने का पात्र है। वर्तमान समय चेतना विमर्श का काल है। दलित पीड़ित

लोग वर्चस्ववादी व्यवस्था को नकारते हुए विकास के लिए संघर्षशील जीवन को अपनाते हैं। यही चिंतन वर्चस्ववादी समाज के दलितों की व्यथा से परिचित कराते हुए दिखाई देता है, साथ ही शेष भारतीय समाज को सोचने के लिए मजबूर करता है। इसका प्रमाण दलित कहानियों एवं उपन्यासों में स्पष्ट है। उपन्यासों एवं कहानियों में सवर्णों की अनीति और वर्चस्ववादी व्यवस्था में हो रहा पतन नए जीवन मूल्यों की देन है, जो मानवीय संवेदना को जोड़ती है। मानवीय चेतना विमर्श धार्मिक, सांस्कृतिक एवं चिंतक की नई कड़ी है, जो दलित पीड़ित, वंचित, शोषितों में विश्वास भर देती है।

सुशीला टाकभौरे की कथा–साहित्य में दलित और स्त्री पर होने वाले अत्याचार एवं शोषण का चित्रण हुआ है। 'नीला आकाश' उपन्यास में हम देखते हैं कि नीलिमा अपनी मां के साथ अपने मां के यहां गई थी। उसी समय ठाकुर सुमेर सिंह दुलिचंद (नीलिमा के मामा) को अपने घर बाजा बजाने के लिए बुलाने आया। दुलिचंद की बहन और भांजी आई हैं,वह उनके साथ समय बिताने की बात ठाकुर सुमेर सिंह को कहता है, ''मालिक घर में बहन आई है मेहमानों को छोड़कर कैसे जाऊं? बहन का नाम सुनते ही सुमेर सिंह दुलिचंद को बहन की गाली देते हुए कहा– तेरी बहन की..... अबे साले चलता है या नहीं? साले हरामी निकाल दूं अभी तेरी मेहमानी? उठता है या लगाऊं दो जूते? मैं तेरे घर बुलाने आया हूं और तू मुझे इस तरह से जवाब दे रहा है? तेरी इतनी हिम्मत?''[7] ठाकुर सुमेर सिंह सवर्ण है और निर्बल दुलिचंद पर अपना रौब दिखाता है। दुलीचंद के सामने उसे बहन की गाली देता है। इस तरह का अपमान बहन और भांजी के सामने ठाकुर सुमेर सिंह करता है। आज भी समाज में दलितों को सम्मान प्राप्त नहीं, वह अपमान से भरी ज़िंदगी जीने को मजबूर हैं। भारतीय समाज में जातिवाद की जड़ें बहुत गहराई तक समाई हुई हैं। विशेषकर गाँव में, जहां दलितों और पिछड़ी जाति के लोगों से भेद–भाव एवं पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है। खुद को ऊँची जाति अथवा अभिजात वर्ग का मानने वाले इन समाजों (दलित एवं पिछड़े) को बराबरी का दर्जा देने को क़तई तैयार नहीं हैं। अगर कोई इन सीमाओं तथा नियमों को तोड़ने का प्रयास करता है तो उसे गंभीर परिणाम भुगतने पड़ते हैं। पुलिस का रवैया भी इस भावना से काफ़ी प्रभावित दिखाई देता है इसलिए अधिकतर दलितों को इंसाफ़ भी नहीं मिल पाता। परिस्थितियां वहाँ और भी ज्यादा विकट हो जाती हैं जहां खुद को ऊँची जाति का मानने वाले लोगों के पास धन–संपदा या सत्ता का बल भी होता है। ऐसे में उनका अहंकार सातवें आसमान पर चढ़ कर बोलता है और वे दलितों को अमानवीयता की हद तक जा कर प्रताड़ित करते हैं।

'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में चमन लाल महिमा से प्रेम विवाह करता है। महिमा छोटी जाति की है। उसे चमन लाल के घर में वह स्थान नहीं मिलता, जो एक बहू को मिलना चाहिए था। महिमा को मेहमान खाने में रहना पड़ता है। चमन लाल नारी सुधार की बात करता है लेकिन समाज के सामने अपने घर में उन नियमों का पालन करता है, जो सवर्ण घर में पालन होता है। महिमा नारी उद्धार सभा की अध्यक्ष रहती है, लेकिन विवाह के बाद महिमा को कभी सामने नहीं आने देता। एक दिन घर पर ही सभा होती है। धीरज के कहने पर चमन लाल महिमा को बुलाता है। उससे पहले ही चमन लाल कह देता है, उसे सर ढक्कर जाना है। महिमा पढ़ी–लिखी लड़की,वह समझदारी से काम लेती है। वह घूंघट निकाल कर सभा में प्रवेश करती है। सभा के लोग यह दृश्य देखकर दंग रह जाते हैं। इस दृश्य को देखकर धीरज कहता है, ''जब हम चाहते हैं महिलाएं सामने आएं और यह महिलाएं हमारा साथ नहीं दे पाती हैं। सचमुच महिलाओं की मानसिकता बदलना बड़ा कठिन है। इसी कारण महिलाएं पीछे रहती हैं।''[8] धीरज का यह व्यंग्य महिमा बखूबी समझ गई थी। वह जवाब देती है – ''पुरुष नारी स्वतंत्रता की बड़ी–बड़ी बातें करते हैं मगर सही मायने में नारी की सफलता से डरते हैं। वह अपनी महिलाओं को घर में कैद रखकर ही, महिलाओं का उद्धार कर लेंगे।''[9] हम देखते हैं कि उच्च वर्ग का चमन लाल समाज के सामने महिमा (जो दलित परिवार से है) से विवाह तो कर लेता है लेकिन उसे घर से बाहर जाने की इजाज़त नहीं होती। स्कूल की नौकरी छोड़कर उसे घर रहने के लिए कहता है लेकिन महिमा 3 महीनों की छुट्टी लेती है, नौकरी नहीं छोड़ती। वह समझदार है, उसे कहीं ना कहीं इस बात की जानकारी थी कि चमन लाल और उसके घर वाले उसे घर में बंदी बनाकर रखेंगे। महिमा को कब क्या करना है? वह बहुत अच्छी तरह से जानती है। अतः कहा जा सकता है कि सुशीला टाकभौरे जी ने 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास के माध्यम से दलित स्वतंत्रचेता,समझदार एवं

संघर्षशील स्त्री की व्यथा को व्यक्त किया है एवं महिला स्वतंत्रता की खोखली बातें करने वाले एवं दलितों के प्रति सहानुभूति दिखाने वाले फर्ज़ी सवर्णों की पोल खोली है। दलितों में शिक्षा का स्तर बढ़ने से उनकी महत्वाकांक्षाएं एवं हौसले बढ़ रहे हैं। दलितों ने अपने हक़,अधिकारों को हासिल करने के लिए लंबा संघर्ष किया है। वह अब जुझारू एवं जागरूक हो रहे हैं। शिक्षा ही वह हथियार है जिसको ग्रहण कर दलित परिस्थितियों को बदलने में सक्षम हो सकता है।

सुशीला जी ने अपने उपन्यास 'वह लड़की' के माध्यम से समाज के अन्दर फैली कुप्रथा एवं दलित महिलाओं के जीवन से संबंधित समस्याओं के चित्र उकेरे हैं। इस उपन्यास के माध्यम से इन्होंने महिलाओं को आत्मनिर्भर एवं सशक्त बनने व अपना स्वयं का वर्चस्व बनाने के लिए महिलाओं को आगे आने पर बल दिया है। समाज व महिलाओं को सुधारने हेतु इस उपन्यास की नायिका ''शैला'' अपने प्रयासों के माध्यम से समाज की सभी महिलाओं को अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों से लड़ने के लिए जागरूक करती है एवं जात–पात तथा समाज में व्याप्त अंधविश्वासों के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करने का प्रयास भी करती है। शैला अपने बेटे का विवाह आश्रम की लड़की के साथ करना चाहती है। आश्रम के प्रबंधक देशपांडे को जब इस बात का पता चलता है तो वे सबसे पहले लड़के की जाति क्या है? जानना चाहते हैं। इसलिए कहते हैं कि– ''वर पक्ष की जाति और धर्म क्या है?''[10] शैला इस कथन को सुनकर आवाक् रह जाती है। लड़की अनाथ आश्रम में पली बड़ी फिर यह प्रश्न क्यों? देशपांडे कहते हैं – ''अनुराधा की जाति और धर्म हम नहीं जानते मगर अनुराधा हमारे आश्रम में हमारी बेटी की तरह पली है। इस तरह वह हिंदू है सवर्ण जाति है यह रिश्ता नहीं हो सकता।''[11] इस तरह की विषमता के ख़िलाफ़ शैला जैसे जुझारू पात्र आवाज़ उठाती है। ऐसे सवर्ण मानसिकता के लोगों पर उसे क्रोध भी आता है, कि आश्रम की कन्या के साथ भी इस तरह की जाति – धर्म की बात करते हैं। यह मनुवादी व्यवस्था का ही रूप है, जो समाज में एक सामाजिक बुराई के रूप में गहराई तक समाया हुआ है।

इसी (वह लड़की) उपन्यास की एक पात्र निशा एक जुझारू एवं जागरूक महिला है लेकिन निशा का पति निशा को परेशान करता है, बात–बात पर तंज मारता है, तंग करता है। उसकी शिकायत रहती है कि निशा मेरे प्रति अपना कर्तव्यों का निर्वहन नहीं करती है। उसका मानना है कि पत्नी का अर्थ है – पति की दासी, आज्ञाकारिणी, अनुगामिनी, सहनशील, मुरूप्राणी आदि। निशा अपने पति को समझाती है कि ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि निशा पति की सेवा के साथ–साथ समाज सेवा का कार्य भी करती है मगर पति का अहम् भाव इसे सहन नहीं कर सका। अंततः पति के तानाशाही व्यवहार से तंग आकर निशा पति से अलग रहने लगती है इसीलिए शैला कहती है कि, ''हम स्त्रियों पर अन्याय करके पुरूष अपने समाज की उन्नति को रोकते है स्त्रियों के विकास से ही समाज का विकास हो सकता है मगर पुरूष अपने स्वार्थ के कारण इस बात को महत्व नहीं देते।''[12]

वस्तुतः सुशीला टाकभौरे का उपन्यास 'वह लड़की' स्त्री पीड़ा, स्त्री शोषण का मर्मान्तक दस्तावेज़ है। सुशीला टाकभौरे इस उपन्यास के माध्यम से न केवल दलित स्त्री की पीड़ा को व्यक्त करती है, बल्कि वह पुरूष प्रधान समाज से मुक्ति के लिए स्त्री को संघर्ष के लिए तैयार करती है। इस उपन्यास में चेतना का वह प्रवाह है जो स्त्री को उसकी नारी शक्ति का अहसास दिलाता है। इस उपन्यास में नारी के जीवन संघर्ष की व्यथा को अभिव्यक्त किया है, साथ ही समाज में फैली कुरीतियों, रूढ़ियों पर कड़ा प्रहार किया है। आज समाज में शिक्षा जागरूकता होने के बावजूद भी स्त्रियों को शोषित, प्रताड़ित एवं अपमानित किया जा रहा है। हम सम्मेलनों, भाषणों आदि में नारी मुक्ति के लिए नारे लगाते है और सुनते भी रहते हैं, पर अपने आस–पास हो रहे नारी अत्याचार को रोकने का प्रयत्न नहीं करते। इस उपन्यास के माध्यम से सुशीला टाकभौरे ने समाज में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का दृष्टिकोण बदलने का प्रयास किया है तथा इसके माध्यम से स्त्रियों को अपने भविष्य के लिए, अपनी उन्नती के लिए आगे बढ़ने हेतु प्रोत्साहित किया है।

'कथारंग' समग्र कहानी की 'संघर्ष' कहानी में सवर्णों द्वारा प्रताड़ित दलित व उनकी मानसिकता को सुशीला टाकभौरे उजागर करती हैं। इस कहानी में शंकर स्कूली लड़कों के परेशान करने पर हेडमास्टर के पास उनकी

शिकायत लेकर जाता है। शंकर हेडमास्टर से कहता है कि, ''सर लड़के मुझे बहुत तंग करते हैं। रोज मुझे मारते हैं,पढ़ने नहीं देते हैं। सर ने पूछा तुम किसके बेटे हो? तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं ? तुम कहां रहते हो? अच्छा! अच्छा तुम जमादारन के नाती हो? तुम्हारी नानी को मैं रोज यहां आते जाते देखता हूं। हां, तो लड़के तुमसे क्या कहते हैं?''[13] हेडमास्टर का इस तरह का रुख शंकर को ज़रा भी नहीं भाता। मास्टर जी भी उन लड़कों की सी बोली बोलते हैं। जाति और गंदे शब्दों से शंकर बार–बार आहत होता है। यह कहानी सिर्फ़ शंकर की ही कहानी नहीं बल्कि यह हर उस दलित व्यक्ति की कहानी है जिसको आज भी समाज में अपमानित, शोषित और मानसिक प्रताड़ना व छुआछूत जैसी भावनाओं से आहत होना पड़ता है जिसे आज भी समाज में अपने सम्मान तथा हक़ के लिए संघर्ष करना होता है।

'जन्मदिन' कहानी में भी मास्टर जी जानबूझकर भरी कक्षा में अछूत बच्चों का जाति बोधक नाम से अपमान करते हैं– ''भंगी की औलाद ही इनका नाम हो। अन्य सवर्ण बच्चों की गलती होने पर जैसे मास्टर को बहुत जोश आ जाता है। वह इन्हें बेरोक–टोक अंधा–धुन मारते–पीटते हैं, गालियां देते हैं और ऐसे पीछे पड़ते हैं कि स्कूल छोड़ने तक, बच्चों का पीछा नहीं छोड़ते। उन्हें दूसरे दुष्ट लोग शह देते हैं –अच्छा मारो और मारो। ये कभी नहीं सुधरेंगे। इन्हें पढ़ कर भी क्या करना है? बाप दादाओं का काम कौन करेगा?''[14] सवर्ण अछूत बच्चों के साथ इस तरह का दुर्व्यवहार करते हैं कि वे बच्चे मजबूरी में शर्म से स्कूल छोड़ देते हैं। दलितों को अनपढ़ तथा शिक्षा से वंचित रखने की साज़िशें भी देखने को मिलती रही हैं। यही वजह है कि आज भी दलितों को समाज में बराबरी का हक़ नहीं मिल पाया है। वे आज भी अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे हैं। भारत में जाति और शिक्षा के बीच सदियों पुराना संबंध रहा है। ऐतिहासिक रूप से अथवा मनुस्मृति के तहत ब्राह्मणों को ज्ञान का असली संरक्षक माना गया है। दुर्भाग्यवश शूद्र और दलित जैसी निम्न वर्ग की जातियों के लोगों को अक्सर हाशिए पर रखा जाता रहा है, उन्हें हीन और शिक्षा के अयोग्य के रूप में चित्रित किया जाता है। यह भेदभाव पीढ़ियों से चला आ रहा है लेकिन महात्मा ज्योतिबा फुले और डॉ. भीमराव अंबेडकर के संघर्षों और जागरूक अभियानों के फलस्वरुप तथा आज़ादी के बाद शिक्षा के प्रचार–प्रसार से एवं सरकार के द्वारा चलाए जा रहे हैं शिक्षा से संबंधित अभियानों से हालाँकि, स्कूल नामांकन दरों में कुछ प्रगति के बावजूद, दलित बच्चों को अभी भी शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है जिसमें गरीबी, सामाजिक भेदभाव और जाति–आधारित पूर्वाग्रह शामिल हैं। यही वजह है कि (en.themooknayak.com के अंतर्गत) इंडोनेशियाई जर्नल ऑफ जियोग्राफी में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, 2001 और 2011 के बीच भारत में एससी और एसटी छात्रों के नामांकन में वृद्धि हुई। हालांकि ड्रॉपआउट दरें उच्च थीं, 68.2 प्रतिशत एसटी और 64.6 प्रतिशत एससी बच्चे उच्च प्राथमिक स्तर तक स्कूल छोड़ देते थे। 88.17 प्रतिशत एसटी और 83.6 प्रतिशत एससी बच्चे माध्यमिक स्तर तक स्कूल छोड़ देते थे। कहने को तो सरकार शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं स्तर को बढ़ाने के लिए अनेक स्कीमों को चला रही है, लेकिन परिणाम शून्य ही नज़र आता है। इस विषय पर अभी और अधिक सतत् रूप से काम करने की ज़रूरत है।

'सिलिया' कहानी में दलित जाति की स्त्री आत्मोद्धार की बात करती हुई दर्शायी गई है। इस कहानी में सिलिया की मां विवाह का विज्ञापन सुनकर चिंतित होती है। चिंता का कारण था मैट्रिक पास शूद्र जाति की लड़की से विवाह करने की इच्छा ज़ाहिर करना। आस–पड़ोस के ज़्यादा बहस में ना पढ़कर सिलिया की मां कहती है– ''नहीं भैया यह सब बड़े लोगों के चोचले हैं। आज समाज को दिखाने के लिए हमारी बेटी से विवाह कर लेंगे और कल छोड़ दिया तो? हम गरीब लोग उनका क्या कर लेंगे ? अपनी इज्जत अपने समाज में रहकर भी हो सकती है हम तो नहीं देंगे अपनी बेटी को हम उसको खूब पढ़ाएंगे।''[15] यहां दलित महिला सिलिया की मां है। बगैर शिक्षा के उनके समाज का उत्थान न हो सकेगा। वह अपनी बेटी को पढ़ाऐंगी। इससे उसका मान–सम्मान खुद बढ़ जाएगा। अपनी क़िस्मत वह खुद बना लेगी। किसी की पत्नी बनकर मान–सम्मान नहीं चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला टाकभौरे जी ने 'सिलिया' कहानी के माध्यम से जुझारू एवं जागरूक महिला का चित्रण किया है जो अपने मान–सम्मान हेतु किसी पर आश्रित ना होकर स्वयं संघर्ष करती है। वह अपने हक़ों और अधिकारों के लिए प्रयत्नशील है।

'बदला' कहानी में गुड्डू का काका बच्चों की लड़ाई होने पर खूब खरी–कोटी सुनाता है– ''भंगी की औलाद. ... अछूत शूद्र ...भिखारी.... भिखमंगे... हमारी दया पर जीने वाले... हमारे टुकड़ों पर पलने वाले... आजकल इनको बहुत घमंड आ गया है .... बहुत गर्रा गए हैं... सण्डे मुसण्डे हो गए हैं... इनको तो गांव में घुसने नहीं देना चाहिए।''[16] गुड्डू का काका तमाम तरह की गालियों से बच्चों को अपमानित एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित करता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सवर्णों में दलितों अथवा निम्न जातियों के प्रति कितनी घृणा, नफ़रत उनके दिलो–दिमाग़ में भारी पड़ी है। वे दलितों अथवा अनुसूचित जाति के लोगों को जगह–जगह पर अपमानित करते हैं। उनके साथ दुर्व्यवहार एवं अत्याचार करते हैं।

'छौआ मां' कहानी में छौआ मां के मना करने पर पटेल के कारिंदे उसे जबरन साथ चलने के लिए कहते हैं, छौआ मां अड़ गई – ''मैं नहीं जाऊं... चाहे जो हो जाए...! मैं अब यह काम नहीं करूंगी.... दायी मां हम तो तोहे लेकर ही जाएंगे.... कहते हुए नारायण मशाल लेकर उसके करीब आ गया। पटेल के करिंदों ने उसे सब तरफ से घेर लिया। छौआ मां ने देखा उसके सब तरफ आग ही आग है।''[17] छौआ मां को पटेल के करिंदों ने ज़िंदा आग के हवाले कर दिया। भारतीय साहित्य में औरत का अभाव स्पष्ट तौर पर नज़र आता है। यह मनु विधि–विधान आज भी प्रचलित है। औरत को मनु ने ढोल, पशु, शुद्र के समान बताया। जहाँ औरत का कोई अस्तित्व नहीं,वह एक वस्तु मात्र है। जिसे बेचा जाता है, जुए में लगाया जाता है, आपस में बांटा जाता है। उसका शोषण किया जाता है, जिसे जब चाहा भोगा जाता है, देवदासी बनाया जाता है, गुलाम बनाया जाता है, घृणित से घृणित करने को मजबूर किया जाता है। संतान उत्पत्ति का सिर्फ एक साधन समझा जाता है। पति मर जाए तो उसे सती किया जाता है, तो कभी ज़िंदा जला दिया जाता है। सुशीला टाकभौरे जी ने इस अन्यायी, घृणित, वीभत्स समाज की दुर्व्यवस्थाओं के सच को उजागर किया है।

'चुभते दंश', 'संभव असंभव', 'दमदार', 'झरोखे', 'मेरा समाज', 'विचार भूमि', 'टूटता वहम', 'धूप से भी बड़ा', 'मुझे जवाब देना है', एवं 'नयी राह की खोज' आदि कहानियों में भी दलित, पिछड़े तथा निम्न जाति समुदाय की व्यथा को कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। 'चुभते दंश' कहानी में संस्था के प्राचार्य ब्राह्मण हैं। मेश्राम के दिए हुए भाषण के बारे में कुछ प्रोफेसर आपस में बात करते हैं – ''कैसे–कैसे लोगों को भाषण देने के लिए बुलाया जाता है? क्या हमको इनकी गालियां सुनने के लिए बैठाया जाता है? नहीं, भाई ऐसा नहीं कहते। यह तो सब राष्ट्रीय कार्यक्रम है देखते नहीं हर संस्था बढ़ चढ़कर ऐसे कार्यक्रमों को आयोजित करती है और अपने आप को समतावादी, समन्वयवादी बनने का प्रचार– प्रसार करती है। आजकल इन्हीं लोगों का जमाना है।''[18] सारी बातें कहानी की नायिका तक्षशिला सुन रही है, आत्मज्ञानी की वेदना ने उसमें साहस भर दिया है। अब वह हर बात पर पहनी नज़र रखती है और अपने विरुद्ध कहीं बातों पर तीखा़ जवाब देती है– ''हमें भी समता–सम्मान का पूरा अधिकार है।''[19] इस कहानी की नायिका तक्षशिल ने जो बातें सुनी उससे वह बहुत आहत होती है लेकिन ब्राह्मण का स्कूल है वहीं कार्य करना है, वह जवाब कैसे दे। बार–बार बातें दिमाग़ में घूमती हैं। अपने विरुद्ध कही गई बातों का अब वह जवाब देने लगी है। हृदय के भीतर रह कर जो शूल चुभ रहे थे अब उससे उभर रही है, क्योंकि समाज में समता और सम्मान का उसे भी पूरा अधिकार है। वह साहसी और जागरूक स्त्री है। भारतीय संविधान ने भी सभी को समान अधिकार दिए हैं।

'जरा समझो', 'आतंक के साये में', 'कड़वा सच', 'साक्षात्कार', 'सारंग तेरी याद में', 'त्रिशूल', 'भूख', 'हमारी सेल्मा', 'दिल की लगी', 'प्रतीक्षा', 'सलीम की अनारो', 'रामकली', 'चलते–चलते', 'सूरज के आसपास', 'वह नजर' आदि कहानियों में दलितों और स्त्रियों के जीवन की समस्याओं का अंकन हुआ है। इन कहानियों में समाज की वर्तमान स्थिति तथा उसकी सच्चाई है कि समाज में आज भी जातिभेद और वर्णभेद है। इनमें स्त्री विमर्श के मुद्दे स्पष्ट नज़र आते हैं। किस–किस तरह स्त्रियां स्वयं को निर्बल मानती हैं तो कहीं–कहीं उन्हें निर्बल रूप में ही आंका जाता है। 'रामकली' कहानी में दलित विमर्श भी है और स्त्री विमर्श भी। यह कहानी भटके विमुका कंजर जाति के जन–जीवन को कटु यथार्थ रूप में चित्रित करती है। ''डॉ. भीमराव अंबेडकर की क्रांतिकारी विचारधारा ने वर्णवेद, जातिभेद और स्त्री –पुरुष भेद की मान्यता और मानसिकता को तोड़ने का प्रयत्न किया है। देश के संविधान में

दलित और स्त्रियों को समता, सम्मान और प्रगति के समान अवसर पाने के अधिकार मिलने के बाद भी अभी भी समाज में उन्हें शोषित, उत्पीड़ित करने की परंपरा निरंकुश भाव से चलाई जा रही है। इन परंपराओं का अंत किया जाना चाहिए, तभी भारतीय समाज व्यवस्था की विषमता को ख़त्म किया जा सकेगा तभी समान रूप से समता–सम्मान के अधिकार के अधिकारों का उपयोग किया जा सकेगा।''[20] सुशीला टाकभौरे जी ने इसी उद्देश्य से अपने कथा–साहित्य का सृजन किया है। प्रत्येक साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह धर्मांन्धता और शोषणपूर्ण पुरानी मान्यताओं का खंडन करके समाज में मानवतावादी विचारधारा का संदेश दे। सत् साहित्य वही है जो समाज का सही मार्गदर्शन करता है।

'जरा समझो' कहानी में सुशीला जी ने धर्म, संस्कृति के थोपे और भोथरे ढकोसलों को एवं भारतीय समाज में व्याप्त जाति के ज़हर को उजागर किया है। कैसा विरोधाभास है एक तरफ हम कहते हैं कि हमारी संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम्' का संदेश देती है। वही अपने ही घर में धर्म एवं जाति के नाम पर लांछन, प्रताड़ना और अपमान को झेलते दलित हैं। इसी दोगलेपन की प्रवृत्ति को उजागर करते हुए लेखिका ने मैनेजर और अजय के माध्यम से कहानी में यथार्थ चित्रण किया है। जाति –भेद एक ऐसा ज़हर है जो नस–नस में समा गया है। एक साज़िश के तहत जाति–भेद की जड़ें समाज में गहराई तक उतर गई हैं। इस जाति–भेद को दलित साहित्य नकारता है। किसी भी प्रकार के असमानता, शोषण, दमन के विरोध में दलित साहित्य की मुखरता उसे आधुनिक बनाती है। 'जरा समझो' कहानी में मैनेजर साहब जो ब्राह्मण हैं। अपने आप को बहुत बड़ा मानते हैं, ''मैनेजर साहब को ब्राह्मण होने का गर्व है। वह स्वयं को कोंकण का चितपावन ब्राह्मण कहलाना गर्व की बात मानते हैं, क्योंकि इसका अपना इतिहास है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले कोंकण के ब्राह्मणों ने अपनी बुद्धि और चातुर्थ से अंग्रेजों से बहुत कुछ पाया था पद–मान, धन वैभव और रंग रूप सौंदर्य भी। मैनेजर साहब ने स्पष्ट किया–आप समझे ही नहीं, अभिमान होना चाहिए आप कोंकणस्थ चितपावन ब्राह्मण हैं। मैं भी कोंकणस्थ चितपावन ब्राह्मण हूं। हम परशुराम के वंशज हैं, वहीं परशुराम जिन्होंने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश किया, जिनके सामने वैश्य और शूद्र कुछ भी नहीं है। उस सनातन धर्म को मानने वाले हम अपनी परंपराओं की रक्षा करते हैं। हम सर्वश्रेष्ठ हैं हम सबसे अधिक बौद्धिक तेज से उत्पन्न हैं। हमें अपनी जाति और धर्म का अभिमान होना चाहिए।''[21] इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने वर्ण–व्यवस्था,जात–पात और जातीय मानसिकता का यथार्थ वर्णन किया है। भारत विभिन्न जातियों, वर्गों एवं संस्कृतियों की संगम स्थली है। हज़ारों वर्षों के उतार–चढ़ाव से नए–नए विचारों तथा जीवन–पद्धतियों का प्रभाव यहाँ के निवासियों पर पड़ा है लेकिन मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव की जो परम्परा इस देश के ज्ञात इतिहास के प्रारंभ से अब तक देखने को मिलती है, वह अविचल एवं स्थिर नज़र आती है। इस तरह समाज आगे नहीं बढ़ सकता। इस पारंपरिक विचारधारा को तोड़ना ज़रूरी है तभी हमारा समाज एवं राष्ट्र तरक़्क़ी की राह पर आगे बढ़ते हुए विकसित एवं विश्वगुरु बन सकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि दलित महिलाओं को अनेक समस्याओं से दो–चार होना पड़ता है लेकिन अब वे जुझारू एवं जागरूक हैं। वे अंबेडकरवादी विचारधारा को अपना कर सवर्ण समाज के ठेकेदारों को जवाब भी देती है। अब उन्हें अपना अधिकार, समता और सम्मान किस तरह हासिल करना है, पता चल चुका है। वह अधिक से अधिक शिक्षित होकर समाज को बदलना चाहती हैं। 'नीला आकाश' की नीलिमा, 'वह लड़की' की शैला और निशा, 'तुम्हें बदलना ही होगा' की महिमा, 'सिलिया' कहानी की सिलिया, 'चुभते दंश' की तक्षशिला एक सशक्त महिला के रूप में उभर कर आ रही है। अपनी दमदार मौजूदगी से सवर्ण समाज के ठेकेदारों को मुंहतोड़ जवाब दे रही हैं। आज महिलाओं को इस तरह से वापसी की आवश्यकता है,चाहे वे दलित हो या सवर्ण। वैसे दलित महिलाओं को सवर्ण महिलाओं से अधिक दंश झेलने पड़ते हैं लेकिन फिर भी महिलाओं की दशा काफ़ी एक जैसी है। डॉ. सुशीला टाकभौरे जी का कथा–साहित्य यथार्थवादी हैं। वह समाज में घट रही घटनाओं को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करती हैं। वह उनको अपने अनुकूल ढालने का अथवा बनाने का प्रयास नहीं करतीं। वे मुख्यधारा के साहित्य और समाज के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति के साथ–साथ, जातिभेद और लिंगभेद से आहत

व पीड़ित समाज के अपमानजनक परिस्थितियों से गुज़रने और उसके अंतहीन संघर्ष एवं अन्य समस्याओं को अपने कथा–साहित्य के माध्यम से उजागर करती हैं तथा दलितों का बहुमुखी विकास हेतु दलित चेतना, आंदोलन,संघर्ष,शिक्षा और संगठन के बल पर आत्मसम्मान, स्वाभिमान और समाज में आमूल–चूल परिवर्तन का उल्लेख करते हुए दलित समाज व स्त्रियों को अपने हक़ अधिकारों के प्रति जागरूक एवं आत्मनिर्भर तथा सशक्त बनने हेतु प्रोत्साहित करती हैं।

संदर्भ सूची

1. कुमार, गिरीश; रोहित, एन. (2004) *दलित चेतना केंद्रित हिंदी–गुजराती उपन्यास,* आर्टस कॉमर्स एण्ड साइन्स कॉलेज, खंभात–388620 गुजरात, पृ. 05।
2. चौधरी, कार्तिक (2020) *दलित साहित्य की दशा–दिशा (समकालीन परिप्रेक्ष्य में),* अधिकरण प्रकाशन, खजूरी खास, दिल्ली–110094, पृ. 70–71।
3. शानू, मोहम्मद (2017) *आलोचना की नई दृष्टि,* वाङ्मय बुक्स, दोदपुर रोड अलीगढ़, पृ. 98।
4. रफी, मोहम्मद; हंचीलाल, एच. (2015) समकालीन हिंदी कहानीः दलित विमर्श (शोध प्रबंध), गोवा विश्वविद्यालय, तालेगांव, गोवा, पृ. प्राक्कथन से।
5. वही।
6. टाकभौरे, सुशीला (2022) *कथारंगः संपूर्ण कहानियां,* प्रलेक प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड ग्लोबल सिटी, ठाणे, महाराष्ट्र, जनवरी 2022, पृ. 07।
7. टाकभौरे, सुशीला (2013) *नीला आकाश,* विश्व भारती प्रकाशन, सीताबर्डी, नागपुर–12, पृ. 68।
8. टाकभौरे, सुशीला (2022) *तुम्हें बदलना ही होगा,* सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 148।
9. वही, पृ. 150।
10. टाकभौरे, सुशीला (2018) *वह लड़की,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 174।
11. वही, पृ. 174।
12. वही, पृ. 69।
13. टाकभौरे, सुशीला (2022) *कथारंगः संपूर्ण कहानियां,* प्रलेक प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड ग्लोबल सिटी, ठाणे, महाराष्ट्र, संस्करण जनवरी 2022, पृ. 19।
14. वही, पृ. 34।
15. वही, पृ. 47–48।
16. वही, पृ. 57
17. वही, पृ. 77
18. वही, पृ. 85
19. वही, पृ. 86
20. टाकभौरे, सुशीला (2022) *कथारंगः संपूर्ण कहानियां,* प्रलेक प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड ग्लोबल सिटी, ठाणे, महाराष्ट्र, जनवरी 2022, पृ. 8–9।
21. वही, पृ. 273।

––==00==––